"मध्यकालीन संत काव्य परम्परा और संत सुन्दरदास"

Saint Poetic Tradition of Medival Hindi Poetry And Saint Sunder Das

महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्व विद्यालय अजमेर

पी.एच.डी. की उपाधि हेतु प्रस्तावित

शोध – प्रबन्ध की रूपरेखा

14/9/2016

शोध निर्देशक

डॉ. नरेन्द्र सिंह

सेवानिवृत्त व्याख्याता

सनातन धर्म राजकीय महाविद्यालय, ब्यावर

शोधार्थी

राज कुमार सेन

महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर

सत्र – 2015

प्रस्तावित शोध प्रबन्ध की अध्याय – योजना

"मध्यकालीन संत काव्य परम्परा और संत सुन्दरदास"

Saint Poetic Tradition of Medival Hindi Poetry And Saint Sunder Das

प्रस्तावना / प्राक्कथन

प्रथम अध्याय	–	हिन्दी साहित्येतिहास का मध्य काल
द्वितीय अध्याय	–	संत काव्य परम्परा
तृतीय अध्याय	–	संत काव्य की उदात्त विशेषताएँ
चतुर्थ अध्याय	–	निर्गुण पंथ के प्रमुख सम्प्रदाय
पंचम अध्याय	–	दादू सम्प्रदाय
षष्ठम अध्याय	–	संत सुन्दर दास के व्यक्तित्व और कृतित्व का अध्ययन
सप्तम अध्याय	–	संत सुन्दरदास के कथ्य और शिल्प का स्पष्टीकरण
अष्टम अध्याय	–	संत सुन्दरदास पर लिखे अब तक के साहित्य की जानकारी
नवम अध्याय	–	वर्तमान में संत सुन्दर दास के साहित्य का महत्व
दशम अध्याय	–	संत सुन्दरदास के विचार–प्रसार हेतु प्रयासरत संस्थाएँ / पत्रिकाएँ
एकादश अध्याय	–	संत सुन्दर दास के पाण्डित्य, सत्यानुभव, काव्य सौष्ठव पर मेरा स्वयं का मत

उपसंहार

सन्दर्भ सूचि

शोध प्रारूप

(Format for out line / Synopsis)

Name of Scholar (In English) : Raj Kumar Sen

शोधार्थी का नाम (हिन्दी में) : राज कुमार सेन

Title (In English) : Saint Poetic Tradition of Medival Hindi Poetry And Saint Sunder Das

शोध विषय (हिन्दी में) : **मध्यकालीन संत काव्य परम्परा और संत सुन्दरदास**

Location **(शोध कार्य का स्थान)** : निवास – शोध पर्यवेक्षक डॉ. नरेन्द्र सिंह आनन्द (सेवानिवृत्त), ब्यावर

: निवास – स्वयं का भीलवाड़ा

: सनातन धर्म राज. महावि ब्यावर

Introduction (प्रस्तावित शोध का परिचय):

सर्व हित के लिए जो कार्य किया जाता है उसी को 'साहित्य' कहा गया है। महाकवि तुलसीदास जी ने साहित्य रचना को 'स्वान्तः सुखाय कह दिया हो किन्तु उनका साहित्य 'सर्वजन हिताय' ही सिद्ध हुआ।' ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति मनुष्य है तो मनुष्य की सर्वश्रेष्ठ कृति साहित्य है। हिन्दी साहित्य सर्वदृष्टि से समृद्ध साहित्य है। इसके विकास को चार कालों में बांटकर इतिहास लेखन प्रारंभ से इसके मध्यकाल को या भक्तिकाल को स्वर्णयुग कहते आ रहे है। इसी स्वर्णयुग की एक धारा संत काव्य परम्परा ऐसी सुरसरी है जो निर्मल स्पष्ट दर्शनी है जिसके प्रवाह में शब्दों की रेत या कंकड स्पष्ट अर्थ लिए हुए है। बाह्याडम्बरों का कोई धुंधलापन नहीं है। इसी संत सृष्ट के निरभ्र आकाश में दैदीप्यमान सबसे चमकिला तारा है सुन्दर दासजी। क्योंकि इस आकाश के सूरज कबीर और चाँद दादू दयाल है।

निर्गुण भक्तिकाव्य धारा ने कितने वादों का एकीकरण कर दिया। वेदों में जिस ईश्वर को अजन्मा, अगोचर, एकमेव कहा उसी को निर्गुण संतकाव्य परम्परा में अपना आराध्य माना है। इस काव्यधारा का प्रवर्तक आशुक्ल कबीर और नामदेव को मानते है। इस धारा को निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा नाम दिया। आ. हजारी प्र. द्विवेदी ने निर्गुण भक्ति साहित्य, रामकुमार वर्मा ने संत काव्य परम्परा आदि नाम दिए जिसमें ज्ञानाश्रमय शब्द तो भ्रामक लगता है क्योंकि संतों ने ज्ञान को अहं का प्रतीक बताया। प्रेम ही सर्वोपरी पथ है जिससे ईश्वर को सहज पाया जा सकता है। यहां संत का अर्थ है बुद्धिमान, पवित्र, परोपकारी व्यक्ति, सज्जन, त्यागी, सिद्ध सार रूप में निर्गुण भक्त भी है।

नामदेव के अनन्तर इस काव्य को परम्परा के आगे बढ़ाने में विभिन्न संतों ने योगदान दिया। इसी कारण यह 19वीं शती के मध्य तक यह परम्परा आगे बढ़ती रही। परशुराम चर्तवेदी ने अपने ग्रन्थ 'उत्तर भारत की संत परम्परा' में इस परम्परा का विद्वतापूर्ण वर्णन किया है। कबीर के अनन्तर विभिन्न संतों ने अपने-अपने अलग पंथों की स्थापना की, किन्तु उन में विचार धारा पद्धति, भावानुभूति एवं अभिव्यंजना शैली की दृष्टि से इनमें परस्पर अन्तर नहीं मिलता है और इसीलिए इन सभी पंथों के द्वारा रचित साहित्य को संत काव्य के अन्तर्गत स्थान दे सकते है। भक्तिकाल के प्रमुख संतमत के प्रवर्त्तक संतों की नामावली निम्नालिखित है –

1. कबीरदास (सं. 1455–1575)	कबीर पंथ
2. रैदास (समकालीन)	रैदासी सम्प्रदाय
3. नानक (सं. 1523 से 1596)	सिख पंथ
4. लाल दास (1597–1705)	लाल पंथ
5. दादू दयाल (सं. 1609–1660)	दादू पंथ
6. हरिदास निरंजन	निरंजनी सम्प्रदाय
7. मलूकदास (1631–1739)	मलूक पंथ

इन्ही संत काव्य परम्परा में दादु पंथ के मुख्य सितारे दादू दयाल के प्रधान शिष्यों में से एक संत सुन्दर दास जी अपने युग के प्रसिद्ध संत रहे। ये भक्तिकाल के सर्वाधिक विद्वान या शिक्षित कवि माने जाते है। संत सुन्दरदास काव्य कला की दृष्टि से उदात्त है ही साथ ही भाव की स्पष्टता, स्वच्छता के लिए भी प्रसिद्ध है। यूं संत कवियों का लक्ष्य काव्य सर्जन नहीं रहा, उनकी रचनाओं में तो जन हिताय और उनके उद्बोधन की भावना सम्मिलित है। भावों के स्पष्टीकरण के लिए उन्होंने प्रतिकों, उपमाओं, रूपकों की योजना अवश्य की है, किन्तु फिर भी काव्यात्कर्ष या काव्य सौष्ठव उनका साध्य नहीं था। इस काल के कवियों ने हिन्दी भाषा के जिस ऐश्वर्य का विस्तार किया यह उनकी असाधारण विशेषता उन्हें उच्च कोटी के कवि और साधक सिद्ध करती है। ऐसा महान संयोग हुआ था संत सुन्दरदास में। उनकी रचनाओं में सर्वत्र यह संयोग मिलेगा। प्राचीन काल के सभी साधक कवियों के व्यक्तित्व का अध्ययन करें तो पायेंगे कि उनमें अपने पांडित्य के लिए उतने प्रसिद्ध न थे जितने संत सुन्दरदास।

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर संत सुन्दरदास के बारे में लिखते है कि 'स्वच्छ पानी की धारा जैसे भूगर्भ से अपने अकृत्रिम आनन्द की प्रेरणा से फूट पड़ती है, उसी तरह संत सुन्दर दास के भावरसधारा भी अपने कृत्रिम आनन्द की प्रेरणा से फूट पड़ी है।'

संत सुन्दरदास का जन्म जयपुर राज्य की पुरानी राजधानी धौंसा या दोसा में सन् 1596 में परमानन्द खण्डेलवाल के यहां हुआ। परमानन्द इनका शरीर सुन्दर और सुडौल था। छह वर्ष की अल्पायु में ही वे संत दादू के शिष्य हुए और ग्यारह वर्ष की अवस्था में संत जगजीवन और संत रज्जब के साथ काशी की यात्रा की। वहां उन्होंने दीर्घकाल तक निवास किया और संस्कृत–व्याकरण साहित्य तथा दर्शन, वेदान्त, पुराण आदि का गंभीर अध्ययन कर, समस्त विधाओं में पारंगत हो कर 1625 ई. शेखावाटी लौट आये। तदन्तर फतेहपुर में किसी गुफा में निवास कर बारह बरस तक उन्होंने योग साधना की। देशाटन उन्हें बहुत प्रिय था। इन्होंने बिहार, बंगाल, गुजरात, मालवा, बदरीनाथ आदि स्थानों का भ्रमण तथा अनेक भाषाओं संस्कृत, पंजाबी, गुजराती, मारवाड़ी, फारसी आदि का ज्ञान प्राप्त किया। भ्रमण करते हुए वे दादू के सिद्धांतों का प्रचार करते थे और साथ ही साथ काव्य रचना भी करते थे। रज्जब उनका विशेष स्नेह था।

सुन्दर दास ने बयालीस ग्रंथों की रचना की थी जिनमें ज्ञान समुद्र और सुन्दर विलास अधिक प्रसिद्ध है। पुरोहित हरिनारायण शर्मा द्वारा सम्पादित 'सुन्दर ग्रन्थावली' (दो भाग) उनकी सभी रचनाओं का प्रामाणिक संकलन है। रमेशचन्द्र मिश्र द्वारा सम्पादित 'सुन्दर ग्रन्थावली' (दो भाग) प्रामाणिक है। उनकी रचनाओं में भक्ति, योग साधना और नीति को प्रधान स्थान प्राप्त हुआ है। श्रृंगार रस की रचनाओं के वे कट्टर विरोधी थे। केशव की रसिक प्रिया, नन्ददास की रसमंजरी और सुन्दर कविराय कृत 'सुन्दर श्रृंगार' की निन्दा में यह छन्द देखिए –

रासिक प्रिया रस मंजरी

और सिंगारहि जानि।

चतुराई करि बहुत विधि

विषै बनाई आनि।।

विषै बनाई आनि

लागत विषयिन को प्यारी।

जागै मदन प्रचण्ड

सराहै नख शिखनारी।।

ज्यौं रोगी मिष्टान पाई

रोगहि निस्तारै

सुन्दर यह गति होई

जु तो रसिकाप्रिया धारे।।

इसके विपरित भक्तिजनित आनन्द अतुलनीय है, जिसे उन्होंने निम्नालिखित शब्दों में भावपूर्ण अभिव्यक्ति दी है।

है यह अति गम्भीर,

उठति लहर आनन्द की।

मिष्ट सु या कौ नीर

सकल 'पदारथ मध्य है।।'

'सुन्दर विलास' इनका प्रधान ग्रन्थ है। इनकी रचनाएँ साहित्यिक और सरस है, भाषा भी परिमार्जित व्रजभाषा है। इन्होंने ज्ञान के अतिरिक्त नीति संबंधी छन्द भी लिखे। इनकी कविता में यमक अनुप्रास, शब्दालंकार और उत्तमोत्तम अर्थलंकार भी मिलते है। इनका एक प्रसिद्ध नीति प्रधान दोहा देखिए –

बोलिए तब जब बोलि की बुद्धि होइ,

न तो मुखमौन गहि चुप होई रहिए।

जोरिए तो तब जब जोरिबे की रीतिजानै,

तुक छन्द, अरथ, अनुप जामें लहिए

गाइए तब जब गाइबे को कंठ होय

स्त्रोन के सुनते ही मनै जाहि गहिए

तुकभंग, छंद भंग, अरथ मिले न कछु

सुन्दर कहत एसी बानी नहिं कहिए।

उनके प्रमुख ग्रंथ है –

सुन्दर विलास, ज्ञान समुद्र, सर्वांगयोग, पंचेन्द्रिय चरित्र गुरू महिमा अष्टम, गुरूषटपंथी, विध्वंसाष्टक रामजी अष्टक, गुरू सम्प्रदाय, सहजानन्द ग्रन्थ, अडिल्ला छंद ग्रंथ, सुख समाधि, स्वप्न प्र वेद विचार, उक्त अनुप, अद्‌भुत उपदेश, पंच प्रभाव, गुन उत्पत्ति निंसानी, बावनीग्रंथ, रामाष्टक, नामाष

आत्मा अचलाष्टक, पंजाबी भाषा अष्टक, ब्रह्मस्त्रोत अष्टक, अजब ख्याल अष्टक, ज्ञान झूलना, तर्क चितावनी, सहजानन्द, गृह वैराग बोध, हरिबोल चितावनी, तर्क चितावनी, विवेक चितावनी, पंवगत छन्द, मडिल्ला छंद, बारहमासों, आयुर्बल भेद आत्मा त्रिविध अन्तःकरण भेद, पूरवी भाषा बरवै साखी ग्रन्थ, पदावली, गूढार्थक रचना ग्रन्थ आदि।

शोध का महत्व :

साहित्य समाज का दर्पण होता है या कहे कि वह दृष्टिकोण या नजरिया होता है जिससे साहित्यकार ने समाज को देखा है। साहित्यकार समाज के साथ–साथ स्वयं के अनुभवों को भी लिखता है। किन्तु इससे आगे एक और पंक्ति है कि साहित्यकार समाज को दर्पण दिखाने के साथ ही कुछ अपेक्षित सुधरा हुआ रूप भी प्रस्तुत करता है। वह समाज के सामने समाज का एक आदर्श रूप प्रस्तुत करता है। ऐसा ही स्वयं एक आदर्श संत, कवि, मानव बन कर समाज को आदर्श बताया है संत सुन्दरदास ने। वे संत पहले थे और कवि बाद में। पूरे के पूरे हिन्दी साहित्य या कहुं कि सम्पूर्ण साहित्यकाश में वे ही पूर्ण बेदाग चन्द्रमा है जिन्होंने किसी भी माध्यम से श्रृंगार का वर्णन कर अपनी मनोग्रंथि का परिचय नहीं दिया है। वर्तमान में जैन संत डॉ. अमरेश मुनि निराला वक्तव्य याद आता है कि "कवि और संत में अंतर नहीं हो सकता। एक बेहतरीन कवि की अन्तरात्मा यदि संत जैसी नहीं है तो वह कवि कैसे को सकता है और यदि संत के भीतर काव्य संवेदनाएं नहीं तो वह संत कैसे हो सकता है। सच तो यह है कि दोनों किरदार मानवीय संवेदनाओं के संवाहक है। संत समय का साक्षी न हो अपितु समय को सत्ता देने वाला क्रांतिकारी भी होता है। यही वजह है कि मेरी कलम अभिव्यक्ति के क्षणों में सन्यासी नहीं हो पाती। मैं सच्चाई को बेखौफ और बेबाक होकर कहता हूं।"

ऐसी ही क्रांतिकारी सोच और अभिव्यक्ति है संत काव्य परम्परा में और इस सपाट बयानी ने परम्परा को संत सुन्दरदास ने बहुत आगे तक जारी रखने का रास्ता बनाया। जहां संत कबीर, नानक, दादू समाज और मन के झूठे आडम्बर, के विरोध निर्मल मन की वकालत की है।

दादू दयाल की शिष्य परम्परा में अगाध प्रतिभा के धनी 'अपर शंकरचार्य' ('संक्राराचा दूसरो दादू कैं सुन्दर भयौ' राघवदास) एवं काव्यगुण ओज में प्रखर 'दिनकर' (दादू दीन दयाल के चेले दोय पचास। केई उडगण केई इन्दु है, दिनकर सुन्दरदास – राघवदास) के समान संत कवि सुन्दरदास (1653–1796 वि.) भाषा काव्य दर्शन संस्कृति की दृष्टि से हिन्द संत काव्य धारा के रचनाकारों में बेजोड़ है। निर्गुण संत कवियों के प्रति प्रायः अनुदार दृष्टि रखने वाले आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे समीक्षक, सुन्दर दास जी की सुशिक्षा और वाणी के काव्य कौशल और भाषा प्रवणता को देख रीझे है। तभी तो नपी तुली भाषा में वे कहने को विवश हुए है कि "निगुर्ण पंथियों में ये ही एक ऐसे व्यक्ति हुए है, जिन्हें समुचित शिक्षा मिली थी और काव्य कला की रीति आदि से अच्छी तरह परिचित थे। अतः इनकी रचना साहित्यिक और सरस है। भाषा भी काव्य की मंजी हुई ब्रजभाषा है। ...संत तो थे ही पर कवि भी थे, इससे समाज की रीति, नीति और व्यवहार आदि पर भी पूरी दृष्टि रखते थे। इन्होंने और निर्गुण पंथियों के समान लोक धर्म की उपेक्षा

नहीं की। पतिव्रत का पालन करने वाली स्त्रियों, रण क्षेत्र में कठिन कर्त्तव्य पालन करने वालों शूरवीरों के प्रति, इनके विशाल हृदय में, सम्मान के लिए पूरी जगह थी।" आचार्य शुक्ल कहते है कि वे मात्र 'कवि' ही नहीं थे अपितु युग के समाज संस्कृति दर्शन और भाषा के प्रति जागरूक बने रह रहकर पूरे जीवन परिवेश के प्रति उत्तरदायी रहे है। सच तो यह है कि अपने देश काल की अस्मिता को इन्होंने वाणी बद्ध किया है।

जिस रचानाकार का व्यक्तित्व और कृतित्व लगभग पूरी एक शताब्दी के फलक पर अंकित हो और जो एक विचार–परम्परा से जुड़कर अपनी वाणी की सार्थकता अनुभव करता हो, एसी रचनाकार के व्यक्तित्व, कृतित्व के केन्द्रीय भाव–विचार को समझने के लिए तत्कालीन युग परिवेश को समझना भी आवश्यक है। संत काव्य परम्परा में संत सुन्दरदास जी अद्वितीय क्यों है इसे जानने के लिए संत काव्य परम्परा को जानना भी आवश्यक है। उनमें काव्य कला के साथ विचार प्रतिपादन अर्थात् आध्यात्मिक अनुभव चेतना की अभिव्यक्ति तथा लोकजीवन में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा उनके प्राथमिक लक्ष्य कहे जा सकते है, इसी अर्थ में रचना कलेवर, अन्य संतों की वाणी से कुछ भिन्न है उनकी साखी है –

बीरवा बुद्धि गुलाब है शब्द सू फूल प्रकास।

सुन्दर आतं ज्ञान कोउ अनुभोउ मध्य सुबास।।

इनकी सारी रचनाएँ इसी उदात्तता, महानता का परिचय मैं हिन्दी साहित्य के पाठकों को कराना चाहता हूं। इनकी सबसे अनोखी बात है कि इन्होंने श्रृंगार रस जो कि रसराज माना जाता है उस पर कोई पद नहीं लिखा, नहीं लिखा तो ठीक है लेकिन उसका विरोध तक कर दिया। अर्थात् सच्चे अर्थों में एक पूर्ण पवित्र संत थे ये। क्योंकि संतो को में शारीरिक या माँसल दृष्ट नहीं होनी चाहिए। सर्व आकर्षणों से मुक्त होना चाहिए। सगुण भक्ति में हम देखते ही है कि जिस आराध्य को भगवान मानाउ से अपनी मनोग्रंथियों के अनुसार लंपट, चोर, झूठा और भी ऐसे कई चरित्र भक्ति की आड़ में आ खड़े किए। इन सब चरित्रों का आध्यात्मिक रहस्य है किन्तु आम जनता उन रहस्यों तक नहीं पहुंच सकती और न ही ये भक्त लोग आम जनता को पहुंचने देते है।

इसी जबरदस्त वैसम्य को देखते हुए ही सुन्दर दास जी को श्रृंगार का विरोध करना पड़ा। मुझे लगता है कि सुन्दर दास जी ने संसार को एक बहुत बड़ा सूत्र दिया है, वह है जिस जगह जाना नहीं वहां का पता क्या पूछना। क्योंकि मन में कोई भी विचार उठता है तो वह हमें प्रभावित करता है हमारे व्यक्तित्व को प्रमाणित करता है। इसीलिए संतों ने मन की टेढी चाल पर मन को खूब फटकार लगाई। हां मन की चंचलता को, उसकी गति को हम रोक नहीं सकते क्योंकि चलना उसका स्वभाव है किन्तु हम उसकी दिशा बदल सकते है। वैचारिक शुद्धता ही जीवन की सबसे बड़ी परीक्षा है। इस परीक्षा को मन को, निर्मल पवित्र रखने की परीक्षा को जिस जीवन के अंतिम दौर की परीक्षा मान रखा है वास्तव में वो संत जीवन और श्रेष्ठ जीवन की पहली परीक्षा है। ऐसे ही समाज को पथ प्रदर्शित करता व्यक्तित्व मैं समाज के समक्ष लाना चाहूता हूं।

पिछले दो तीन दशकों में अचानक आकर जीवन में हलचल मचाने वाले उपकरणों ने अनचाहे और मनचाहे का संतुलन बिगाड़ दिया है। बाहरी दुनिया की इस चमक दमक ने अन्तर्मन की शांति का शांत कोलाहलहीन आकाश धुंधला कर दिया है। यहीं कारण है कि हजारों प्रकार सी सुविधाएं जुटा लेने के बाद भी शांति और सुख का साधारण टुकड़ा भी मनुष्य को नहीं मिल पाता। आज अनचाहा नब्बे प्रतिशत है तो लुटा पिटा, नुचा हुआ मात्र दस प्रतिशत मनचाहा जीवन में शेष है। दस प्रतिशत मनचाहे को संभाल रखने का तरीका हमें सुन्दरदास जी जैसे संत सदियों पहले बता चुके है। जीवन में सकारात्मकता बहुत जुरूरी है।

ये सब बाते मेरे शोध विषय के महत्व को प्रतिपादित करती है कि ऐसे संत काव्य परम्परा और संत सुन्दरदास जी पर एक बार फिर शोध होना चाहिए।

प्रस्तावित शोध के उद्देश्य :–

किसी भी शोध का प्रथम उद्देश्य तो यही होता है कि साहित्य समाज उस शोध विषय को एक बार जाने। उस विषय की गहराई को जाने। मेरे शोध का उद्देश्य भी यही है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास का जो स्वर्णिम युग है उसकी स्वर्णिम धारा के स्वर्णिम कवि सुन्दर दास जी के बारे में साहित्य समाज ज्यादा जाने। क्योंकि सुन्दर दास जी संत काव्य धारा, दादू सम्प्रदाय से संबंध रखते हुए पूरे साहित्य समाज में अलग ही आभा लिए हुए है। यह आभा एक तो उनकी काव्य कला की है दूसरी उनके काव्य विषय की है। उनकी भाव भूमि तो उदात्त है ही किन्तु उनकी कर्म भूमि भी उदात्त है। वे संत होकर कबीर, नानक, दादू की तरह ही कागद लेखी न कहकर आँखिन देखी कहते है और कुछ कहना उनका हर बार सार्थक है, महत्वपूर्ण है। उनका कथ्य और शिल्प हर बार, हर जगह उपादेयता, सच्चाई की कसौटी पर खरा उतरता है। बालवय में संत दीक्षा ले बारह वर्षों तक एकांत साधना, दीर्घकाल तक सभी विषयों का गहराई से अध्ययन के कारण उनकी आत्मा, परमात्मा से शक्ति पाकर बहुत अधिक शक्तिशाली, दैदीप्यामन हो गयी। उनका प्रकाश अपने सम्प्रदाय लोक में उजाला करता था। साथ ही तत्कालीन सम्पूर्ण भक्तिकाव्य पर उनका उज्ज्वल प्रकाश दृष्टिगत होता है। खास बात यह कि वे किसी सीमाओं में बंधकर न रहे। वे समाज को तो सीख देते ही है किन्तु साधु संत, साहित्यकार जो उनके बराबर खड़े है को भी सीख देने से नहीं चूकते। ऐसी हिम्मत कम संतों में ही होती है। वे संत थे मात्र कथावाचक नहीं। समाज को दिशा सूचक यंत्र की तरह हवाओं की दिशा बताने वाले संत थे। संत होते हुए भी सामाजिक कर्त्तव्यबोध उसी तरह था जैसे किसी कर्त्तव्यनिष्ठ उत्तम सामान्य जन में होता है। वे सामाजिक, साहित्यिक विद्रुपताओं के विरूद्ध केवल संत भक्त और जनता को जागरूक नहीं करते बल्कि मुठ्ठी तानकर इन विद्रुपताओं से अकेले जूझते नजर आते है।

बस इसीलिए ऐसे क्रांतिकारी मन की निर्मलता को पूरी गहराई तक बनाये रखने वाले सच्चे संत पर मेरा शोध करने का उद्देश्य है।

हिन्दी साहित्य में आडम्बर रहित ज्ञानमार्ग का जो स्वर्णलोक कबीर नानक दादू बसा गए उसी स्वर्गलोक के प्रधान देव नजर आते है संत सुन्दर दास। उनकी रचनाओं के संकलनकर्ता, संपादक, आलोचक, समीक्षक आदि सभी संत सुन्दर दास जी को अद्वितीय घोषित कर चुके है। ऐसे संत पर शोध करना मेरा उद्देश्य है।

वे मात्र रचना के लिए काव्य रचना नहीं करते। जिस व्यक्तित्व ने संत समाज, कवि समाज को जगाया उसे सामान्य जन भी जाने। उनके लेखन से नये साहित्यकार प्रेरणा लेकर अपने सृजन को उदात्त, सफल बना सकते है। साहित्य का मूल या प्राण 'रस' है या कहे आनन्द है। लेकिन मैं इसमें कुछ और जोड़ना चाहता हूं कि साहित्य का सार सीख है। अगर किसी विधा से कोई सीख नहीं मिले तो वह उदात्त सृजन नहीं कहला सकता।

राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी कहा है कि –

केवल मनोरंजन ही

न कवि कर्म होना चाहिए।

उसमें तनिक उपदेश

का भी मर्म होना चाहिए।।

मैं भी इस साहित्याकाश का क्षुद्र तारा तो नहीं पर तारे सी चमक और टिमटिमाने का गुण लिए हुए धरती पर कभी–कभी चमकता जुगनूं हूं। तो काव्य मंचों पर कहता हूं कि "कवि सम्मेलनों में हँसी की कविता भले ही हो किन्तु यह भी ध्यान रहे कि कविता की हँसी ना हो।"

इसी साहित्यिक श्रेष्ठता के प्रमाण और सीख मिलती है संत सुन्दर दास जी में।

मध्यकालीन श्रेष्ठ ग्रंथों के अध्ययन–अध्यापन की आवश्यकता पर जोर देते हुए गुरूदेव टेगौर ने लिखा है –

कोई भी भाषा अपने साहित्य की दृष्टि से ही अपने प्रति श्रद्धा आकर्षित कर सकती है। इस प्रकार का विशेष महत्व हिन्दी भाषा के साहित्य में यथेष्ट रूप में पाया जाता है। मध्ययुग के साधक कवियों ने हिन्दी भाषा में जिस भावधारा का ऐश्वर्य विस्तार किया है उसमें असाधारण विशेषता पाई जाती है। स्वच्छ जल का स्त्रोत जिस प्रकार पृथ्वी के गर्भ से अपने वेग के साथ स्वतः ही उत्सारित होता रहता है उसी प्रकार इन कवियों की भावधारा अपने शुद्ध आनन्द की प्रेरणा से स्वतः प्रवाहित हुई है। इस प्रकार के कवियों में एक मात्र सुन्दरदास ही शास्त्रज्ञ पंडित थे। भारत के मध्ययुग के हिन्दी साहित्य से जो लोग परिचित होना चाहते है, उनके लिए पुरोहित श्रीयुत हरिनारायण शर्मा, विद्याभूषण बी.ए. द्वारा, संपादित समग्र

'सुन्दर ग्रंथावली' विशेष रूप से आदरणीय होगी। मैं अपने शोध में उपर्युक्त सम्पदकों के अतिरिक्त श्रीमान् रमेशचन्द्र मिश्र द्वारा सम्पादित 'सुन्दर ग्रन्थावली' का अध्ययन और सरलीकरण स्पष्टीकरण करूंगा।

मेरे शोध उद्देश्य को मैं बिन्दुवार स्पष्ट करता हूं –

1. हिन्दी साहित्य इतिहास के साथ मध्यकाल का पुनः अध्ययन।
2. मध्यकाल की संत काव्य परम्परा का पुनः अध्ययन।
3. संत काव्य की उदात्त विशेषताओं का अंकन।
4. संत काव्य परम्परा में संत सुन्दर दास जी के व्यक्तित्व का संक्षिप्त अध्ययन।
5. सुन्दर दास की कृतित्व का संक्षिप्त अध्ययन।
6. संत सुन्दर दास के कथ्य और शिल्प का स्पष्टीकरण।
7. संत सुन्दरदास के उदात्त तत्व को जानना।
8. संत सुन्दरदास पर लिखा अब तक के साहित्य की जानकारी।
9. वर्तमान में संत सुन्दरदास के साहित्य का महत्व।
10. संत सुन्दरदास के विचार प्रसार हेतु प्रयासरत संस्थाएँ।
11. संत सुन्दर दास के पाण्डित्य, सत्यानुभव, काव्य सौष्ठव पर मेरा स्वयं का मत स्पष्ट करना।

समालोचना या पुनर्विचार : –

कवि अपनी भावनाओं और कल्पनाओं से शब्द संजोकर सृजन कर्म से जुड़ता है। सृजन ही वह सेतु है जो कवि की अनुभूमियों और जन सामान्य को जोड़ता है। इसीलिए कहा गया है कि सृजन ही जीवन जगत के, उसके कवि अनुभवों का संसार होता है और उसे जगत के सम्मुख प्रस्तुतकर कवि सारी विसंगतियों को दूर करते हुए नये समाज के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करता है।

हिन्दी साहित्य का पूरा का पूरा संत काव्य और संत सुन्दर दास जी की ऐसी ही सृजनधर्मिता अपनी रचना के साथ निर्माण की दिशा भी देती है। संत सुन्दर दास अध्यात्म और दर्शन के साथ मनसा वाचा कर्मणा पवित्रता की बात करते है। व्यवहार को उच्च बनाकर उच्च जीवन निर्माण की बात करते है। पतिव्रता नारी को श्रेष्ठ घोषित करते है। वे अपरिग्रह, अहिंसा, तप, सादगी, मौन की बात करते है जिसे जन सामान्य के साथ संत समाज भी भूल रहा है।

संत सुन्दर दास जी ने साधना और अध्ययन तथा व्यापक जन सम्पर्क के साथ बहुत अधिक मात्रा में साहित्य सृजन भी किया है। यह समय के अधिकतम उपयोग तथा एक उदात्त लक्ष्य के बिना करना संभव नहीं है। इनका सृजनात्मक लेखन, बहुत सार्थक और धारा प्रवाह प्रवर्चन, जीवन के हर पहलू को छूना, दैनिक व्यस्तता के उपरान्त भी काव्य, के साथ प्रतिबद्धता को कोई छुड़ा नहीं पाया और यहीं समर्पित स्वभाव साहित्य जगत में इनको अद्वितीय संत और कवि की उपाधि दिलाता है।

मेरे शोध पर पुनर्विचार में मैं प्रसिद्ध आलोचक और साहित्यकारों के नाम लेना चाहूंगा जिन्होंने संत सुन्दरदास जी को सराहा है या शोध करने योग्य घोषित किया है। राघवदास ने अपने ग्रंथ में इन्हें दादू दयाल की शिष्य परम्परा में अगाध प्रतिभा के धनी और अपर शंकराचार्य कहा है –

"संक्राराचारज दूसरो दादू के सुन्दर भयौ।"

एवं काव्य गुण ओज में प्रखर 'दिनकर' कहा है –

"दादू दीनदयाल के चेले दोय पचाय।

कैई उडगन केई इन्दु हैं, दिनकर सुन्दर दास।।"

आदि के साथ भाषा–काव्य–दर्शन–संस्कृति की दृष्टि से हिन्दी संत काव्यधारा के रचनाकारों में बेजाड़ बताया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है – सुन्दर दास मात्र कवि ही नहीं थे अपितु वे अपने युग के समाज संस्कृति दर्शन और भाषा के प्रति जागरूक बने रहकर पूरे जीवन परिवेश के प्रति उत्तरदायी रहे है। सच तो यह है कि अपने देशकाल की अस्मिता को इन्होंने वाणी बद्ध किया है।

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी मध्यकालीन ग्रंथ रत्नों के संपादन प्रकाशन और अध्ययन–अध्यापन की आवश्यकता पर जोर दिया है और उन लोगों को धन्यवाद दिया जो लोग हिन्दी भाषा के प्राचीन श्रेष्ठ ग्रंथों का उनके रचनाकारों का जन साधारण के अनादर और उपेक्षा से उद्वार करके उन्हें प्रकाश में लाने तथा उसके प्रचार के कार्य में प्रवृत्त होते है।

पण्डित श्रीयुत पुरोहित हरिनारायण शर्मा ने 34 –35 वर्षों का अनथक प्रयास या परिश्रम करके 'सुन्दर ग्रन्थावली' का 1936 ई. में प्रकाशन कर संत सुन्दर दास पर शोध सामग्री जुटाई है। इसी सामग्री को और अधिक, सटीक बनाने का प्रयास किया है रमेश चन्द्र मिश्र ने 'सुन्दर ग्रन्थवली' का संपादन करके।

परम्परागत मापदण्डों से संत साहित्य की समीक्षा करना आज के दौर में न्याय नहीं होगा। भारतीय जन इतिहास की लगभग एक हजार वर्षों का लोकाभिमुख वाणी (अभिव्यक्ति), जो 'राम' एवं 'दर्द' की

पृष्ठभूमि में लोकशील का निर्माण करना चाहती थी, अभिजात्यवादी प्रवृत्ति के कारण उपेक्षित एवं तिरस्कृत बनी रही है या दर्शनाशास्त्र के प्रतिबिम्ब के रूप में विवेचित होती रही है। फलतः युग सन्दर्भ के प्रति जागरूक संत सुन्दर दास की रचना समीक्षा और शोध सीमित घेरे में रहना स्वभाविक है। संतों की रचना मात्र शब्द योजना, उपदेशक की वाणी अथवा जीवन संग्राम से भगाने वाली निर्वेद प्रधान वैराग्यपूर्ण वाणी नहीं है। सच तो यह है कि परिवेश की मरणोन्मुख विसंगति में इन संत रचनाकारों के मन झुलसते रहे है वे अपने परिवेश के 'जन' के प्रति संवेदनशील बने रहे। इसलिए इनकी वाणी, अपनी विचार उष्मा व लेकर, समताकाश में उर्ध्वमुखी बनी रहकर भी, धरती के 'मानस' की तपन बुझाती रही है। इनकी वाणी व्यास गद्‌दी पर बैठे हुए पुरोहित कथावाचक द्वारा दिया गया एक तरफा उपदेश नहीं है। यह वाणी ज हृदय का 'संवाद' है, जो कुटिलता और अपराधवृत्ति की दुनिया से निकल कर चेतना को 'साधु' बनाने व ओर अग्रसर करती है। ऐसी वाणी की मूल चेतना की कसौटी न तो नायक–नायिका, भेद प्रधान श्रृंगार : शांत हो सकता है क्योंकि गृह वैराग्य प्रधान शान्तरस निर्वेद पर आधारित है। दूसरी ओर जीवन निरपे दार्शनिक वृत्ति भी उसकी परख का आधार नहीं बना सकती। वास्तव में संत वाणी जीवन दृष्टि है, दर्श शास्त्र नहीं। संतों का 'दर्शन' जीवन के धरातल पर एक आचरित या आचरणशील जीवनदृष्टि है, जिस सामाजिक सन्दर्भ स्वयं व्यंजित है। संतों ने 'करनी' और 'रहनी' के आधार पर जीवन का स्वयं अप आंखों से साक्षात्कार किया है। अतः इनकी वाणी में प्रेम तत्व, विरह दर्द, आनन्द भाव, वेद साधना, प व्रता, साधु सती और सूरमा की प्रतिष्ठा जैसे गुरू मूल्य निहित है। ये जीवन मूल्य आरचण के धरातल प परस्पर साम्प्रदायिक सौमनस्य के भावों द्वारा सहस्त्राब्दियों से पौषित बने रहे है। फलतः वाणी में आडम पाखण्ड का तिरस्कार करके, सहज जीवन जीने की प्रेरणा निहित होती रही है। इसी वाणी की र परम्परा को पुनः आज के मापदण्डों पर आज की आवश्यकता को देखते हुए पुनः उनकी व्याख्या का श आवश्यक है।

पूर्व प्रकाशित लेखों में या उक्त विषयों में पायी गयी कमियां :–

संत काव्य परम्परा पर कुछेक सफल शोध या समीक्षाएँ हुई है किन्तु संत सुन्दर दास पर अब अपेक्षित शोध नहीं हुआ है। हां दो बार उनकी रचनाओं का संकलन सम्पादन जरूर हुआ है। ग्रन्थावलियों में मात्र उनकी वाणियों का प्रकाशन हुआ। सुन्दर दास जी के व्यक्तित्व पर तत्का परिस्थितियों पर ज्यादा प्रकाश नहीं डाला गया है। पहली बार सुन्दर ग्रंथावली का सम्पादन करने वाले हरिनारायण शर्मा की ग्रंथावलियां सहज उपलब्ध नहीं है। दूसरे संपादक रमेश मिश्र ने भी परिस्थितियों परम्परा पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया है। पुरोहित हरिनारायण का सुन्दर दास जी की वाणियों का प संकलन तो उन्होंने 1918 ई. में 'सुन्दर सार' के नाम से प्रस्तुत किया जिसमें कुछ चुनिंदा पद ही थे फिर 'सुन्दर ग्रन्थावली' ये भी उनकी रचनाओं का वर्णन शिर्षकवार न कर छह विभागों या अध्याय अपनी ग्रन्थावली को पूर्णकर दिया। उनका ज्यादा ध्यान सुन्दर विलास या सवैया ग्रन्थ पर रहा सर्वाधिक प्रसिद्ध था। ज्यादातर रचनाओं को फुटकर काव्य में डाल दिया। हां रमेश चन्द्र मिश्र ने उ प्रत्येक छोटी बड़ी रचना को एक पूर्ण रचना माना है। फिर भी पं. हरिनारायण शर्मा और रमेशचन्द्र मिश्र

ग्रन्थावलियों में मूल पाठ की व्यवस्था का अन्तर क्रमशः बहुत ज्यादा और थोड़ा कम रहा है। समीक्षा विवेचन प्रस्तुत करने के दृष्टिकोण में भी अंतर रहा है।

कवि रचना को परखने के आध्यात्मिक, दार्शनिक, काव्यशास्त्रीय एवं पिंगल शास्त्रीय परम्परित मापदण्ड अब उस रूप में ग्राह्य नहीं रहे। वैसे भी, अब संतवाणी को काव्य शास्त्रीय या रसवादी मूल्यों पर परखना उचित नहीं है। संत वाणी के विगत वर्षों के अध्ययन से हमें लगता रहा है कि मनीषी संतों की वाणी भारतीय भूखण्ड के बहुत बड़े हिस्से में अंकुरित और पल्लवित हुई है। इस वाणी ने भरत के बहुत बड़े भू भाग की निवासियों की मानसिकता को 'समभाव' में पोषित किया है। अतः ऐसी चेतनापुष्ट वाणी का समीक्षा अध्ययन मात्र काव्य शास्त्रीय रसवादी या अलंकार–छन्दादि परम्परित ढर्रे की कसौटी पर करना न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता। जिन संतो, रचनाकारों ने समाजेतिहास की उन विषम परिस्थितियों में परिवेश की विसंगति से दायित्वपूर्वक संघर्ष किया था और चेतना व्यवहार या कथनी करनी की लड़ाई में, लोकमंगल का संकल्प लेकर समतावादी ऊर्जस्वित वाणी बोल को मुखर किया था, वह आज हमारे बीच मंगल काव्य बनकर प्रतिष्ठित है। उस वाणी ने जन ह्रदय को निरन्तर अमृत उष्मा का अनुभव कराया है। ऐसे संतो के व्यक्तित्व और कृतित्व पर खुली या विशाल दृष्टि से शोध होने चाहिए। ताकि हम उनको और अधिक गहराई से जान सके। मैं इसी गहराई को अपने शोध में रखने का प्रयास करूंगा।

शोध पूर्वानुमान :–

अगर शोधपूर्ण हो जाता है तो हिन्दी साहित्य में संत काव्य परम्परा को उसका महत्व संत सुन्दरदास को साहित्य के पाठक और विद्यार्थी जान सकेंगे। संत सुन्दर दास के श्रेष्ठ चयनित 2–3 पदों को विद्यालय और विश्व विद्यालय स्तर पर पाठ्यक्रम में शामिल कर पायेंगे। मेरा यही प्रयास रहेगा कि राजस्थान प्रदेश के इतने महान संत से वंचित विद्यार्थी उन्हें, उनकी रचना को जान सकेंगे।

और सबसे महत्वपूर्ण जो उद्देश्यपूर्ण होगा वो है कि जहां साहित्य में शृंगारिक वर्णनों की बाढ़ आ रही है। साहित्य इतिहास का कोई भी काल रहा हो शृंगार रस रसराज रहा और उसी रस राज का विरोध कर दिया संत सुन्दरदास जी ने । तो ऐसे महान निर्मल संत और कवि को संत समाज और साहित्यिक समाज के साथ पाठक विद्यार्थी भी जान पायेंगे।

संत सुन्दर दास के व्यक्तित्व और कृतित्व को जनता के सामने लाने का एक प्रयास स्वयं मैने अपने व्यक्तिगत स्तर पर किया है। यह संभव हुआ जब मुझे यूनेस्को एसोसिएशन के पूर्व अध्यक्ष और खण्डेलवाल वैश्य समाज के पुरोधा स्वर्गासीन श्याम जी बनवाड़ी ने मुझे 'सुन्दर विचार' मासिक पत्रिका का संपादक कार्य सौंपा।

इस विषय में शोध करना स्वर्गीय बनवाडी को मेरी श्रद्धांजली होगी और इस शोध के बाद मैं पुनः सुन्दर विचार पत्रिका प्रारंभ करवा पाऊँगा। किसी ने कहा है कि "सबक की स्लेट पर दुनिया भर के लेखक लिखे गए को पहले मिटाते है, बाद में अपना लिखते है।" साहित्यिक संसार में ऐसी ही परिपाटी

है। इसलिए भी हिन्दी साहित्य के स्वर्णिम युग के स्वर्णिम पक्ष पर संत काव्य और सोने से भी ज्यादा उज्ज्वल संत सुन्दर दास जी पर मेरा शोध पूरा कर पाऊँगा। यह शोध मेरी व्यक्तिगत रूचि रही है।

शोध विधि :–

शोध की अनेक विधियों में से मुझे जो विधियां प्रमुखतः काम में लेनी है वे विधियां है –

1.ऐतिहासिक विधि 2. मूल्यांकन विधि 3. योगदान विधि 4. व्यावहारिक विधि 5. सर्वेक्षण विधि 6. अनुसंधानात्मक विधि।

संदर्भ ग्रंथों / साइट्स की सूची :–

1. मध्यकालीन संत काव्य में प्रेम तत्व (राज पब्लिशिंग हाउस) जयपुर, वंदना शर्मा
2. हिन्दी सा. का इतिहास आ. शुक्ल अशोक प्रकाशन नई दिल्ली
3. हिन्दी सा. और संवेदना का विकास (लोक भारती प्रकाशन–इलाहबाद) रामस्वरूप चतुर्वेदी
4. हिन्दी भाषा एवं साहित्य (गोयल एण्ड कम्पनी, बीकानरे) डॉ. वेंकट शर्मा
5. हिन्दी सा. की भूमिका (रामकमल प्रकाशन, नई दिल्ली) – ह.प्र. द्विवेदी
6. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास (राधा कृष्ण, नई दिल्ली) – बच्चन सिंह
7. हिन्दी सा. का वैज्ञानिक इतिहास (लोक भारती प्रकाशन, इलाहबाद) – गणपतिचन्द्र गुप्त
8. सुन्दर ग्रन्थावली 2 भाग सं. रमेशचन्द्र मिश्र (किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली)
9. हिन्दी भाषा और साहित्य (विजय प्रकाशन मंदिर, वाराणसी) डॉ. कैलाशनाथ पाण्डेय
10. हिन्दी साहित्य का इतिहास (मयूर पेपरवैक्स–नोएडा) सं. डॉ. नगेन्द्र
11. हिन्दी साहित्य का इतिहास (लोक भरती प्रकाशन, इलाहबाद) –लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
12. हिन्दी साहित्य का इतिहास (कॉलेज बुक डिपो, जयपुर) डॉ. चातक एण्ड प्रो. राजकुमा शर्मा
13. हिन्दी सा. का इतिहास (माया प्रकाशन मंदिर, जयपुर) डॉ. हरिचरण शर्मा
14. सुन्दर विलास (हंसा प्रकाशन, जयपुर), सं. रतनलाल मिश्र

15. राजस्थानी सा. का इति. (रचना प्रकाशन, जयपुर) हरदान हर्ष
16. राजस्थानी भक्ति साहित्य (एमएआरजम कोटा खुला विश्व विद्यालय की पाठ्यपुस्तक)
17. वाड्मय हिन्दी पत्रिका – अलिगढ़
18. संत कवि रतना (इन्द्र प्रस्थ इन्टरनेशनल, दिल्ली) डॉ. जगमल सिंह
19. रज्जब की सरबंगी (ब्रहमोहन सांवडिया, रायगढ़ (छत्तीसगढ़)) – ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल
20. भक्ति आन्दोलन : इतिहास और संस्कृति (वाणी प्रकाशन) – कुंवरपाल सिंह
21. भक्ति के आयाम – प्रेम शंकर
22. दादू जीवन दर्शन – बलदेश वंशी
23. दादू काव्य की सामाजिक प्रासंगिता – रविन्द्र कुमार सिंह
24. संत रज्जब (विश्व विद्यालय प्रकाशन वाराणसी) – नंद किशोर पाण्डेय
25. हिन्दी सा. का अभिनव इतिहास (विश्व विद्यालय प्रकाशन वाराणसी) – प्रो. वशिष्ठ अनूप
26. हिन्दी सा. का नवीन इतिहास (विश्व विद्यालय प्रकाशन वाराणसी) – डॉ. लाल साहब सिंह
27. मध्ययुगीन काव्य साधना (विश्व विद्यालय प्रकाशन वाराणसी) – डॉ. रामचन्द्र तिवाड़ी
28. हिन्दी साहित्य : विधि परिदृश्य (विश्व विद्यालय प्रकाशन वाराणसी) – डॉ. सयानन्द गुप्त
29. मध्यकालीन काव्य प्रतिभाएं (विश्व विद्यालय प्रकाशन वाराणसी) डॉ. रामकली सर्राफ
30. मध्यकालीन भक्ति काव्य का सामाजिक विवेचन (विश्व विद्यालय प्रकाशन वाराणसी) – डॉ. सुमन शर्मा
31. भारतीय साहित्य का आधा इतिहास (भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली) – सुमन राजे
32. www.mehisant.com
33. www.hi.m.wikipedia.org
34. www.pustak.org
35. www.bharatdiscovery.org

क्रु

36. www.hindisamay.com
37. www.hindimeripahachan.blogspot.com
38. www.kashikatha.com
39. www.sahityaalochan.blogspot.com
40. www.sahitya-aalok.blogspot.com
41. www.hindisahityaias.wordpress.com
42. www.cptutorial.blogspot.com
43. www.vangmaypatrika.blogspot.com
44. www.santsandardas.com
45. www.supremeblissresearchfoundation.org
46. www.leadersindia.in
47. www.vaniprakashan.com
48. www.spirtualworld.co.in
49. www.oshoworld.com
50. www.books.google.co.in
51. www.shodhganga.inflibnet.ac.in
52. www.bharatdarshan.co.nz
53. www.abhivyakti-hindi.org
54. www.gadyakosh.org
55. www.kavitakosh.org
56. www.hindiwebduniya.com